ઉપનિષદ સાહિત્ય અને તેનું તત્ત્વદર્શન

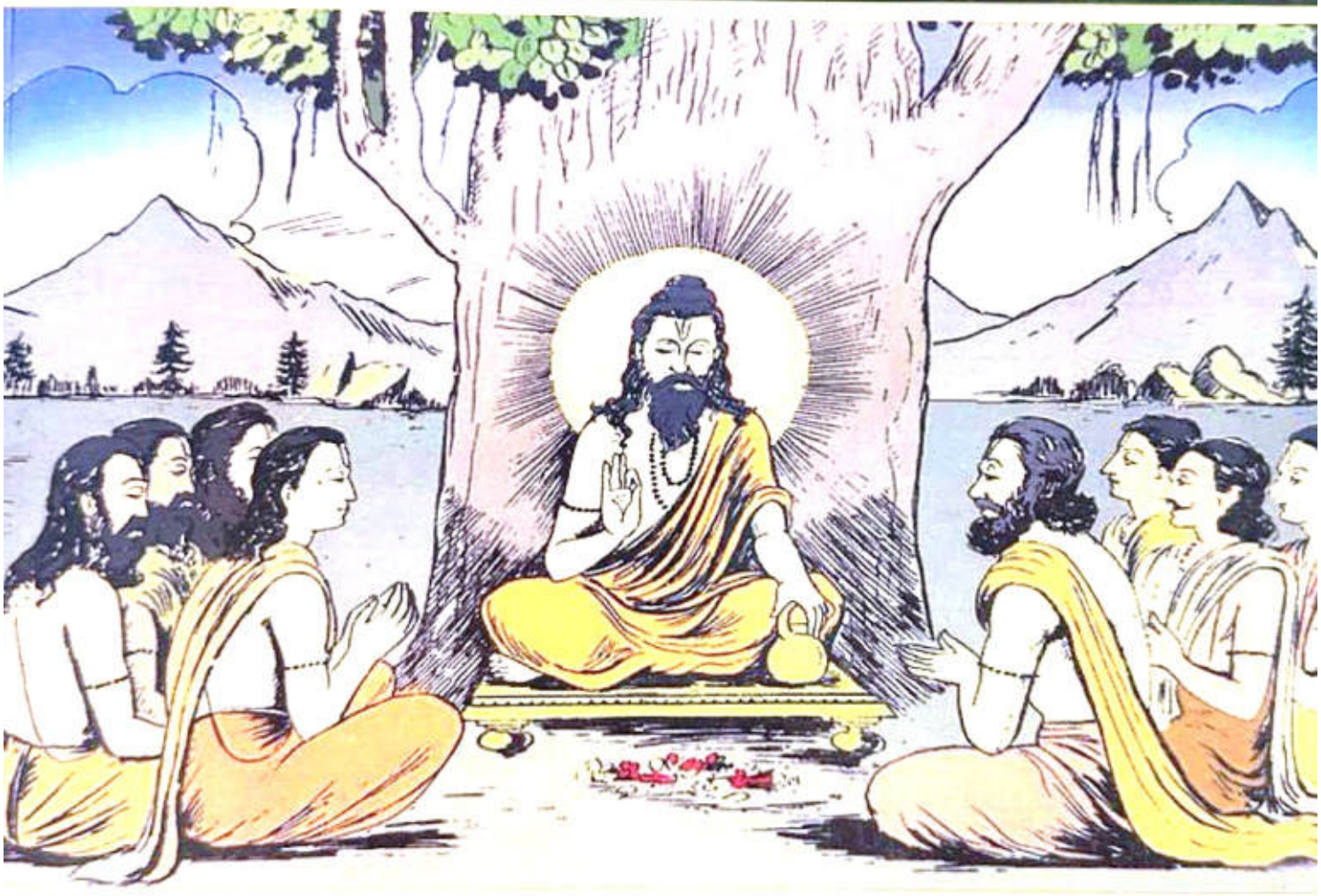

:: સંપાદક ::

પ્રિ.ડૉ. કે.એલ.પટેલ

પ્રા.ડૉ. આર.જે.જોષી

પ્રા.ડૉ. એ.એસ. પટેલ

પ્રા.વી.જી. પટેલ

પ્રા.ડૉ. ડી.કે. ભોયા

ઉપનિષદ સાહિત્ય અને તેનું તત્ત્વદર્શન

ઉપનિષદ વિષયક અભ્યાસ લેખો

© સંપાદકોના

પ્રથમ આવૃત્તિ : જાન્યુઆરી –૨૦૧૮

પ્રત: ૫૦૦

મૂલ્ય : રૂા. ૫૦૦/–

ISBN :978-81-928439-8-8

પ્રકાશક:

મહિલા આર્ટ્સ કોલેજ,વિદ્યાનગરી,હિંમતનગર

મુદ્રક :

સ્વાધ્યાય પ્રિન્ટર્સ એન્ડ પબ્લિકેશન
સિવિલ સર્કલ, હિંમતનગર,
જિ.સાબરકાંઠા,

પ્રાપ્તિ સ્થાન :

મહિલા આર્ટ્સ કોલેજ,વિદ્યાનગરી,હિંમતનગર

અનુક્રમણિકા

ક્રમ	લેખ	લેખક	પાનો નં.
૮૬.	વેદાન્ત વિષયક ઉપનિષદો વિષય સમીક્ષા	પ્રા.વિષ્ણુભાઇ જી. પટેલ	૩૦૦
૮૭.	ઉમાશંકર જોષીનું ઇશાવાસ્ય ઉપનિષદ	પ્રા.પલ્લવી ત્રિવેદી	૩૦૪
૮૮.	ઉપનિષદ મેં શ્રેયમાર્ગ તથા પ્રેયમાર્ગ વિચારણા	સંગીતા જી. ચૌધરી	૩૦૭
૮૯.	મુખ્ય ઉપનિષદ કા પરિચય	સાગર જી. દેરાસરી	૩૦૯
૯૦.	ઇશાવાસ્ય ઉપનિષદમાં પૂર્ણ બ્રહ્મ	પ્રા.સીમા ડી. પટેલ	૩૧૪
૯૧.	ઉપનિષદ ભારતીય આધ્યાત્મિક ચિંતન	પ્રા. સુરેશભાઇ પટેલ	૩૧૭
૯૨.	ઉપનિષદોના રચયિતા – દ્રષ્ટાઓ	દિપીકાબેન આઇ. પટેલ	૩૨૦
૯૩.	માંડુક્યકારિકામાં અદ્વૈતવાદ(અજાતવાદ)	પ્રિયંકકુમાર એન. રાવલ	૩૨૪
૯૪.	ઉપનિષદો મેં ભારતીય તત્વદર્શન	જે.એમ. પટેલ	૩૨૭
૯૫.	ઇશ ઉપનિષદમાં વિદ્યા અને અવિદ્યા	એન. જે. પંડ્યા	૩૩૦
૯૬.	ઇશાવાસ્ય ઉપનિષદ અમૃત અને વર્તમાન સંદર્ભ	ડૉ. પ્રવિણાબેન કે. પટેલ	૩૩૩
૯૭.	ઉપનિષદનો શાંતિપાઠ	પ્રા.ડૉ. ભાઇલાલ એલ. પટેલ	૩૩૭
૯૮.	ઉપનિષદમાં શ્રેય–પ્રેય વિચારણા	પ્રો.ડૉ. સંકેતભાઇ આર. પારેખ	૩૩૯
૯૯.	છાંદોગ્ય ઉપનિષદમાં તત્વમસિ અર્થાત તુ તું છે.	ડૉ. પ્રવીણ અમીન	૩૪૩
૧૦૦.	તૈત્તિરીય ઉપનિષદમાં વર્ણિત દીક્ષાંત ઉપદેશ અને પ્રવર્તમાન સમયમાં તેની યથાર્થતા	ધવલકુમાર એચ. મહેતા	૩૪૭
૧૦૧.	Vedic Religion Virtual Learning Environment	Dr. Pathik D. Barot	૩૫૦
૧૦૨.	ઉપનિષત્સુ આત્મતત્ત્વમ્	દવે જય બી.	૩૫૩
૧૦૩.	Upanishadic Thoughts is Hermann Gesse's Siddharthad	Jigna K. Vora	૩૫૫
૧૦૩.	ઇશાવાસ્ય ઉપનિષદના ટીકાકારોનું તત્વચિંતન	ડૉ. જીતેન્દ્ર આઇ. ટેલર	૩૫૮
૧૦૪.	Upanishad and Its Prevalence in Recent Time	Dr. Prashant B. Parihar	૩૬૧
૧૦૫.	ઉપનિષદ તથા તેનો વ્યુત્પત્તિજન્ય અર્થ	શિવાંગ જોષી	૩૬૩
૧૦૬.	ઉપનિ ષદોઃ માનવજાતે કરેલી શોધના દસ્તાવેજો	વિશાલ એ. જોષી	૩૬૫
૧૦૭.	એતરેય ઉપનિષદ મેં સૃષ્ટિપ્રક્રિયા	ડૉ. મંજુલા એન.સોલંકી	૩૬૭
૧૦૮.	ઇશાવાશ્ય ઉપનિષદમાં તત્ત્વચિંતન	ભાનુબેન બી. ખરચીયા	૩૭૧
૧૦૯.	મુંડકોપનિષદ : એક અભ્યાસ	ડૉ. સતીષ એસ. પટેલ	૩૭૪
૧૧૦.	મુખ્ય ઉપનિષદોનો પરિચય	ડૉ.નીતિનકુમાર જે. ગામિત	૩૭૭
૧૧૧.	ઉપનિષદો મેં વૈશ્વિક યજ્ઞાચિતન	રાધાબેન એમ. પટેલ	૩૮૧
૧૧૨.	ઉપનિષદનું એક વિરલ પાત્ર : નચિકેતા	પ્રા પાયલ સોની	૩૮૫
૧૧૩.	ઉપનિષદોનું તત્વચિંતન	ડૉ. હરેન્દ્રકુમાર વી.ચૌધરી	૩૮૯
૧૧૪.	ઉપનિષદ સાહિત્ય, એક સમીક્ષા	પ્રિ.ડૉ. અલ્કાબેન શાહ	૩૯૩
૧૧૫.	ઉપનિષદનું તત્ત્વચિંતન	ડૉ.સી.આર. પટેલ	૩૯૭
૧૧૬.	ઉપનિષદની વાણીમાંથી પ્રગટતાં જીવનમૂલ્યો	ડૉ. નિયતિ અંતાણી	૩૯૯

ऐतरेय उपनिषद् में सृष्टिप्रक्रिया

डॉ. मंजुला एन. सोलंकी
अध्यापिका,संस्कृत विभाग
आदर्श कॉलेज, मोडासा.
मो. नं.9427847281
mnsolanki81@gmail.com

ऐतरेय उपनिषद् का संबंध ऋग्वेद के साथ है । ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण के द्वितीय
आरण्यक के चार, पाँच और छ अध्याय को ऐतरेय उपनिषद् कहते है । यह उपनिषद् का
नामउनके ऋषि इतरा के पुत्र महिदास ऐतरेय पर से पड़ा है । यह उपनिषद् के कुल तीन
अध्याय है । सभी अध्यायो में ब्रह्मविद्या केन्द्रस्थान पर है । यही कारण से उपनिषद् साहित्य
में बहुगणनापात्र स्थान रखता है । उपनिषद् साहित्य के प्रसिद्ध चार महावाक्यों में से एक
महावाक्य "प्रज्ञानं ब्रह्म" इस उपनिषद् के तृतीय अध्याय का मुख्य विषय है ।

सृष्टिप्रक्रिया

सृष्टिप्रक्रिया में अति प्राचीन रूप उपनिषद् साहित्य में दिखाई देता है । सृष्टि की रचना
कैसे हुई उसकी चर्चा बहुत उपनिषदों में हुई दिखाई देती है । श्री रोहित महेता कहते है कि –
"यह सभी उपनिषदोंमें सृष्टि के सृजन का केवल उल्लेख ही दिखाई देता है । समस्त सृष्टि तथा
जीवों की रचना कैसे हुई उनकी चर्चा सर्व प्रथम ऐतरेय उपनिषद् में दिखाई देती है ।[२] इस
कारण से यह उपनिषद् महत्त्व का स्थान रखताहै ।

सृष्टि का सृजन कैसे हुआ उसके वर्णन के प्रारंभ में यह उपनिषद् कहता है कि – इससे
पहले एक मात्र आत्मा ही था, अन्य कोई भी चेष्टा (क्रिया) करनार नहीं था ।उसने विचार किया
कि लोकों की रचना करुं ।[३]

आत्मा इस सृष्टि के मूल में रही अंतिम और परमसत्ता है ।वह सभी कारणों का भी
कारण है, जब वह स्वयं अकारण है । वह स्वयंभू है । वह स्वयं ही अपना कारण है, वह स्वयं
ही अपना आधार है । प्रश्न होता है की कोई तत्त्व स्वयं ही अपना कारण कैसे बन सके ? एक
तत्त्व एक साथ कार्य और कारण दोनों कैसे संभव हो सके ? वास्तव में यह एक रहस्य है ।
प्रश्नकर्ता परमतत्त्व में विलिन हो जाता है तब ही उनका सच्चा जवाब मिल सकता है ।रोहित
महेता कहते है कि – "मानवमन जिसका प्रारंभ या अंत है उसको ही जान सकता है । जो
अनादि और अनंत है इसे मन द्वारा नहीं जान सकता है । जब मन की सीमा का उल्लंघन
किया जाता हैतब ही वह तत्त्व को जान सकता है ।[४] परमतत्त्व आत्मा मन से परे है । वह
अनिर्वचनीय है, वहाँ ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान विलिन हो जाते है ।

सृजन की प्रक्रिया में यहाँ एक दूसरा प्रश्न होता है कि – आत्मा में से सर्व प्रथम कौन
सी वस्तु का सृजन हुआ ? इस प्रश्न का जवाब भी प्रथम मंत्र में मिल जाता है । 'स इक्षत्'
उन्ही ने विचार किया वहउनका प्रथम सृजन है । वास्तव में परम आत्मतत्त्व ज्ञाता, ज्ञेय और
ज्ञान से परे की अवस्था है जो ऐसा है तो विचार स्वयं उनका प्रथम सृजन है । स इक्षत् यह
सृष्टि का प्रारंभ बिंदु है । उतना ही नहीं, ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान ऐसे भेद भी वहाँ से शुरु हुए ।

उच्च बौद्धिक स्तर से उत्पन्न हुए यह प्रश्न परमतत्त्व के मूल स्वरूप के साथ कितने
सुसंगत है, वह चर्चा का विषय है । भिन्न-भिन्न स्तर से उनका भिन्न-भिन्न जवाब दिया गया
है । पुराणकथाओं उन्हें भगवान कीलीला के रूप से पहचान कराती है । तैत्तरीय उपनिषद्
सृष्टि के मूल के लिए आनंद को व्यक्त करते है । कोई उन्हें परमतत्त्व के रहस्य के लिए व्यक्त
करता है ।

सृजन का क्रम

पहले एक मात्र आत्मा ही था । उन्हों ने लोको की रचना करने का विचार किया
परिणाम स्वरुप उन्हों ने अम्भ, मरीचि, मर और आप ऐसे चार लोक की रचना की[५] जो
द्युलोक से पर है वह अम्भ कहलाती है ।अंतरिक्ष या भुवर्लोक मरीचि है, पृथ्वी मर लोक
कहलाती है । जय पृथ्वी के नीचे रहा लोक आप कहलाता है । दूसरे शब्दों में अम्भ आकाश
या स्वर्गलोक है, वह मन का प्रदेश है, मरीचि का तात्पर्य यही होता है । अतः वह तेज या

प्रकाश का लोक है। मर भौतिक जगत का निर्देश करता है।

सृजन की प्रक्रिया के कुल तीन भाग यहाँ दिखाई देते हैं। (१) लोक या क्षेत्रों का निर्माण (२) क्षेत्र या जीवन के प्रारंभ की पूर्व तैयारी (३) उसमें जीवन का उद्भव। प्रथम अध्याय के प्रथम खंड के प्रथम मंत्र में सृजन की इच्छा व्यक्त हुई है। द्वितीय मंत्र में भिन्न-भिन्न लोक की रचना तथा जल द्वारा उनकी पूर्व तैयारी प्रकट हुई है। तृतीय मंत्र में वही जीवों की उत्पत्ति बताई है।

सृजन की प्रक्रिया की छोटी-बडी अनेकमाहिती स्पष्ट करते हुए ऐतरेय उपनिषद् कहता है कि – उसने तप किया उसी से तप्त होकर अण्डे की तरह फूटकर मुख प्रकट हुआ। मुख से वाणी तथा वाणी से अग्नि प्रकट हुआ। उसके बाद नासिका के दोनोंछिद्र प्रकट हुए। नासिका में से प्राण और प्राण में से वायु उत्पन्न हुआ। इस तरह आँखो के दो छिद्र उत्पन्न हुए उसमें आँख और आँख में से आदित्य (सूर्य) प्रकट हुआ।उसी तरह कान के दो छिद्र प्रकट हुए, कान में से श्रोत्रेन्द्रिय और उन में से दिशाएँ प्रकट हुई। इस के बाद त्वचा प्रकट हुई, त्वचा से लोम और उन में से औषधियाँ प्रकट हुई। बाद में हृदय प्रकटहृदय हुआ। हृदय में से मन और मन में से चन्द्रमा प्रकट हुए। इस के बाद नाभि प्रकट हुई। नाभि से अपानवायु और उसी से मृत्यु प्रकट हुई। उस के बाद शिश्न प्रकट हुआ। उसी से वीर्य और वीर्य से जल उत्पन्नहुआ।[७]

सृजन हुए ये सभी देव इस महान समुद्र में आ गए तब उनको भूख और प्यास से युक्त कर डाला। ये सभी उनको कहने लगे की हमारे लिए एक ऐसे स्थान की व्यवस्था कीजिएकि जिस में रहकर हम अन्न का भक्षण कर सकें।[८] इस तरह प्रत्येक इन्द्रियरूपी देव भोजन और निवास के लिए याचना करते है। यहाँ उपनिषद् कहते है कि – परमात्मा द्वारा उनके लिए गाय का शरीर लाया गया। उनको देखकर उन्हों ने कहा - यह हमारे लिए पर्याप्त नहीं है। इस के बाद उनके लिए अश्व का शरीर लाया गया। उन्हों ने फिर से कहायह भी हमारे लिएपर्याप्त नहीं है।[९] इस के बाद उनके लिए पुरुष का शरीर लाए। वह बोले वाह! यह तो बहुत सुंदर है। मनुष्य शरीर सुंदर रचना है। बाद में ये सभी ने अपने-अपने योग्य स्थान में प्रवेश के लिए परमेश्वरने आज्ञा की।[१०]

सभी देवताओंने अपने अनुरूप स्थान में प्रवेश किया। अग्नि वाणी बने, वायु प्राण बने, सूर्य नेत्र बने, दिशाएँ श्रवणेन्द्रिय बनी, औषधि रुँवटे (रोम) बनी। चन्द्रमा ने मन बनकर हृदय में प्रवेशकिया, मृत्युने अपान बनकर नाभि में प्रवेश किया, जल के देवताने वीर्य बनकर लिंग में प्रवेश किया।[११]

इस तरह विभिन्न इन्द्रियाँ और भूख तथा तृषा की रचना हुई।इस के बाद उन्हों ने विचार किया कि उनके लिए अन्न की रचना करनी चाहिए।[१२] उसने जल को तप्त करके (गर्म करके) उस में से अन्न की रचना की। इस अन्न भुक्ता से विमुख होकर पलायन करने लगा तबउसने वाणी, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, त्वचा, मन तथा शिश्न द्वारा पकडने का प्रयास किया लेकिन उन्हीं से अन्न पकड सका नहि। आखिर वह अपानवायु द्वारा पकडा सका।[१३]

<u>ऐतरेय उपनिषदका उत्क्रांतिवाद</u>

विश्व के मूल में रहे हुए अंतिम तत्त्व में से इस सृष्टि का सर्जन कैसे हुआ उसी चर्चा सृष्टि प्रक्रिया का मुख्य विषय है। वैज्ञानिकों के मत के मुताबिक अवजो बरसों पहले कोई भीग्रह का अस्तित्व नहीं था। उस समय मात्र गेस का एक तपता हुआ गोला ही अपनी चारों ओर गोल-गोल घूमता था। अनेक वर्षों के बाद वह गोला ठंडा होने लगा। परिणाम स्वरूप उसमें से सूर्य, ग्रहों, वनस्पतियाँ, जीवंत शरीर आदि विकसित होने लगे।

उत्क्रांतिवाद विचारधारा अनुसार वर्तमानकाल में जो जीवंत शरीर दिखते है उन्हीं का क्रमिक रूप से विकास हुआ है।गेस का गोला ठंड पडते ही भिन्न-भिन्न ग्रह उत्पन्न हुए। पृथ्वी की उत्पत्ति इस तरह हुई। पृथ्वी पर सर्वप्रथम निम्न कक्षा के जीवों के शरीर का उद्भव हुआ था। अनेक वर्षों तक इस शरीरों में हुएपरिवर्तन के कारण परिवर्तन के परिणाम स्वरूप क्रमिक रूप से उच्च कक्षा के प्राणीयों और अंत में मानवशरीर का उद्भव हुआ है।

ऐतरेय उपनिषद में उत्क्रांतिवादी सृष्टिप्रक्रिया के बीज पडे हुए दिखाईदेते हैं। यह उपनिषद मात्र सृष्टि की ही नहीं परंतु वर्तमानकाल में दिखाई देते भिन्न-भिन्न जीवंत शरीर क्रमित रीत से कैसे विकसित हुए उसका सर्वप्रथम खयाल देते हैं।

सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई उन्हींके वर्णन का प्रारंभ करते हुए ऐतरेय उपनिषद कहते है कि – "ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसित् । " उस के पहले एक मात्र आत्मा ही था ।१४ आत्मा के मूल रूप की चर्चा कते हुए उपनिषद् कहते है कि वह सच्चिदानंद रूप है, वह पूर्ण चैतन्यरूप है ।

वैज्ञानिक भी सृष्टि की उत्पत्ति की चर्चा करते हुए कहते है कि पहले मात्र एक तप्त हुआ गेस का गोला गोल-गोल घूमता फिरता था ।यहाँ तप्त तथा गोल-गोल फिरना ये क्रिया या गति का सूचक है । इसका अर्थ यह हुआ कि सृष्टि के प्रारंभ में कोई जडतत्त्व नहीं, परंतु चेतनतत्त्व था । गेस का गोला शब्द वस्तु के अनिश्चित या निराकार रूपका सूचक है । उपनिषद में आत्मा या ब्रह्म को निराकार बताया है । इस तरह ये दोनों विचार मूलतत्त्व की बाबत में मिलते आते हैं ।१५

ऐतरेय उपनिषद कहता है कि यह अद्वितीय आत्मा ने अनेक होने काविचार किया परिणाम स्वरूप, उन्हों ने द्युलोक, अंतरीक्ष, मृत्युलोक और जल की रचना की । पृथ्वी पर जीवन का प्रादुर्भाव किस तरह हुआ उसका वर्णन करते हुए वह कहते है कि उन्हों ने लोकपाल कीरचना करने का विचार किया परिणाम स्वरूप उन्हों ने जल में से ही पुरुष को निकालकर मूर्तिमान बनाया ।

यह मंत्र साबित करता है कि जल में से ही जीव का प्रारंभ हुआ । यह विचार अर्वाचीन वैज्ञानिकोका जीवो की उत्पत्ति के विचार से मिलता है ।१६ यहाँ पुरुष का अर्थ मानवशरीरवाला पुरूष ऐसा नहीं है । लेकिन पुरुष का अर्थ जीवनतत्त्व ऐसा होता है । जल में से पुरुष को निकालकर उसे योग्य रूप दिया गया ऐसा कहकर यह उपनिषद् सर्जन का एक मूलभूत सिद्धांत व्यक्त करता है कि रूप जीवन तत्त्व को अनुसरता है ।

उत्क्रांति के सिद्धांत के मुताबिक जीवों की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं द्वारा हुई है । प्रारंभ में मात्र एककोषीय जीव उत्पन्न हुए ।अमीबा उनका एक उत्तम उदाहरण है । इस एककोषीय जीवका एक भाग विस्तृत होता है और कालान्तर से वह विस्तृत हुआ अंश मूलशरीर से भिन्न होकर स्वतंत्र जीव के रूप में अस्तित्व में आता है । इस के बाद अनेक कोषीय जीव विकसित हुए । जिस में स्वेदज, अण्डज, आदि जीवों का समावेश कर सकते हैं । अंत में सस्तन प्रणीविकसित हुए जिस की प्रजोत्पत्ति गर्भधारण द्वारा होती है ।

श्री रोहित महेता कहते है कि – ऐतरेय उपनिषद् उत्क्रांति की समस्त प्रक्रिया की विस्तारपूर्वक चर्चा करता नहीं है । वह कथा का प्रारंभअण्डज जीवों से करते है । उपनिषद् कहता है कि उसने तप किया । उस तप से अण्डे की तरह (फूटकर) मुख प्रकट हुआ ।१७ इस के बाद वाक्-इन्द्रिय नासिका, आँख, श्रोत्रेन्द्रिय, त्वचा, हृदय, मन, नाभि, अपानवायु,मृत्यु और अंत में शिश्न की उत्पत्ति हुई ।१८

इस मंत्र मं शरीर के भिन्न-भिन्न अंग कैसे प्रकट हुए उसका वर्णन हुआ है । वह कहते है कि उसने तप किया । तप से तप्त होकर उनका अण्डो की तरहविस्फोट हुआ । यहाँ अण्डज जीवों की उत्पत्ति का स्पष्ट निर्देश दिखाई देता है । इस के बाद के मंत्र में अण्डज में से सस्तन प्राणीयों के विकास की ओर की गति का स्पष्ट उल्लेख हुआ है ।

भिन्न-भिन्नइन्द्रियरूपी देवों को भूख और तृषा युक्त बनाए तब उस देवों ने अन्न का भक्षण कर सके ऐसे स्थान की याचना की । "परमात्मा उनके लिए गाय का शरीर लाए, उसे देखकर उन्हों ने कहा हमारे लिए यहपर्याप्त नहीं है ।"१९

इस के बाद उनके लिए पुरुष शरीर लाए - वह बोले वाह ! वाह ! यह तो बहुत सुंदर है । (सुन्दर है ।) मनुष्य शरीर सुन्दर रचना है ।२०

उत्क्रांति की इस अवस्था में सस्तनप्राणीयों के विकास का स्पष्ट उल्लेख दिखाई देता है । सर्वप्रथम गाय और अश्व के शरीरों का सर्जन हुआ । उत्क्रांति का वैज्ञानिक अभिगम के

मुताबिक अश्व ये सस्तन प्राणी के पूर्ण विकास का प्रतीक है ।परंतु देव कहते है कि हमारे लिए यह पर्याप्त नहीं है । अर्थात् अश्व शरीर उत्क्रांति का अंत नहीं है । उत्क्रांति का प्रवाह अब बहुत आगे बढना चाहिए और यह प्रवाह को अंत में उपनिषदकारमानवशरीर के उद्‌भव की बात करते है ।

वैज्ञानिक उत्क्रांतिवाद के मुताबिक जीवन का प्रारंभ जल में से हुआ । हजारों वर्षों के बाद उन में से सर्प आदि उदर से चलनेवाले जीव विकसित हुए । यहाँ सेजीवों की उत्क्रांति के दो भाग पडते है । एक ओर अण्डज जीवों का विकास हुआ और दूसरी ओर जीवज या सस्तन प्राणीयों का विकास हुआ । ऐतरेय उपनिषद् में जीवों की उत्पत्ति का जो क्रम बताया हैवह वैज्ञानिक उत्क्रांतिवाद से मिलता आता है । उपनिषदकार सर्व प्रथम अण्डज जीवों की उत्पत्ति बताता है और बाद में ही जीवज या सस्तन प्राणीयों के उद्‌भव का उल्लेख करते है। उपरांत गाय और अश्व जैसेप्राणीयों की उत्पत्ति के बाद ही मानवशरीर की उत्पत्ति का विचार व्यक्त करते है ।

उत्क्रांतिवाद के मुताविक जीवनतत्त्व की विकास यात्रा में सरल में से अति जटिल शरीर उत्पन्न हुआ । परिणाम स्वरूप कार्यों की भिन्नता और विशिष्टता कुदरती रीत से ही उत्पन्न हुई । अमीवा एककोपीय जीव है । अतः उस में कार्यों की भिन्नता दिखाई नहीं देती । वह अपने एककोपीशरीर से ही सभी प्रकार के जैविक कार्य करते है । वह विना मुख मात्र शरीर से खाना भी लेते हैं। क्रमशः अनेककोषी जीव विकसित हुए, परिणाम स्वरूप उनके शरीर बहुत से बहुत जटिल बनते गए ।शरीर की जटिलता ने भिन्न-भिन्न इन्द्रियाँ, उनके भिन्न-भिन्न कार्यों तथा विशिष्टताओं को जन्म दिया ।

ऐतरेय उपनिषद् भिन्न-भिन्न देवों के मानवशरीरमें अपना योग्य स्थान ग्रहण करने को कहते हैं तव वहाँ इन्द्रियों की भिन्नता तथा उनके विशिष्ट कार्यों का स्पष्ट स्वीकार हुआ दिखाई देता है । इसके बाद सभी देवों ने अपने अनुरूप स्थानों में प्रवेशकिये । अग्नि वाणी बना, वायु प्राण बना, सूर्य आँख बना, दिशाएँ श्रवणेन्द्रिय बनीं, औषधी रुव्टे बनीं, चन्द्रमा ने मन बनकर हृदय में प्रवेश किया, मृत्युने अपान बनकर नाभि मेंप्रवेश किया और जल के देवताने वीर्य बनकर लिंग में प्रवेश किया ।[२१]

भिन्न-भिन्न इन्द्रियों के बीच कार्य विभाजन तथा कार्य की विशिष्टता का स्पष्ट खयाल हमें ऐतरेय उपनिषद् के प्रथम अध्याय के तीसरेखण्ड में दिखाई देता है । परमात्माने विचार किया कि भिन्न-भिन्न लोकपाल की रचना तो की है । अव उनके लिए अन्न की रचना करनी चाहिए ।[२२] फलतः अन्न की रचना हुई । लेकिन यहाँ एक विचित्र परिस्थतिउत्पन्न होती है । भूख और तृषायुक्त प्रत्येक इन्द्रिय अपना स्वरूप और विशिष्ट कार्यक्षेत्र के मुताबिक अपने विषय का ग्रहण कर सकती है । आँख, जिह्वा, नाक, त्वचा आदि इन्द्रियों ने अन्न को ग्रहण करनेका प्रयास किया । लेकिन उस में निष्फलता मिली । और जो उस में इन्द्रियाँ सफल हुई होती तो अन्न का वर्णन करके ही तृप्त हो जाती ।